वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

January-2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

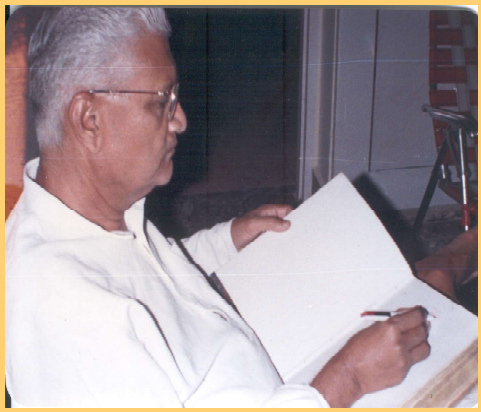

सर्व दुःख और क्लेशसे मुक्त होनेकी मास्टर की!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

जगतमें किसी भी मनुष्यको आप यदि कहेंगे कि, सभी प्रकारके दुःख और क्लेशसे मुक्त होनेकी मास्टर–की यदि आपको दी जाये तो? तो वह क्या कहेगा? कि, अरे! किसी भी कीमत पर ऐसी मास्टर–की तो ले ही लेनी चाहिये। क्या कहेगा? सर्व दुःख व सर्व क्लेश यानी जन्मके दुःख, मृत्युके दुःख, टॅन्शनके दुःख, रोग व पीड़ाके दुःख, अकस्मातकी बाधा आदि संसारके जितने भी प्रकारके दुःख हैं, चाहे संयोग या वियोगके अर्थात् इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग, जो भी हो सब दुःखोंसे छुटकारा यदि एक आत्मज्ञानसे होता हो, तो ऐसा आत्मज्ञान किसी भी कीमत पर कर ही लेना चाहिये – यह सीधी–सादी बात किसीको भी बुद्धिगम्य होवे ऐसी है या नहीं? लेकिन ऐसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कैसे हो? तो कहते हैं कि, प्रथम आपको आत्मकल्याणका विचार आना ज़रूरी है। वह विचार भी विचारबलयुक्त होना चाहिये। और ऐसे विचारबलकी उत्पत्ति हेतु सत्संग ज़रूरी है, साथ ही असत्संग और असत्प्रसंगसे हटना ज़रूरी है। क्योंकि जहाँ सत्संग होता है वहाँ असत्संग नहीं होता और जहाँ असत्संग होता है वहाँ सत्संग रहेगा नहीं। इसे कैसे समझे? कि, जैसे यहाँ सत्संग किया हो, बराबर! स्वाध्यायहॉलमें आकर सत्संग किया और घर पहुँचते ही फिरसे ममत्व करने लगे, घर जाकर या दुकान जाकर जिसको जो भी उदयप्रसंग हो उसमें जाते ही हम पुनः ममत्व करने लग जाते हैं तब हम असत्संगका आश्रय कर रहे हैं ऐसा लगता है क्या? कि, यह तो मैं असत्संगका आश्रय करने लगा! वह ऐसे कि यहाँ मैं असत्संगका आश्रय कर रहा हूँ और सत्संगका आश्रय मेरा छूटा जा रहा है, इसी वज़हसे मुझे जो सत्संगसे लाभ होना चाहिये वह लाभ नहीं हो रहा है। क्योंकि ये सबमें ममत्व करना वह असत्संग और असत्प्रसंग है । घरमें रहनेमें आपत्ति नहीं है किन्तु ममत्व करनेसे आपत्ति है। अपनत्व नहीं करना चाहिये। फिर घरमें रहकर करना क्या? तो उत्तर है कि अनादिसे जो अपनत्व हो रहा है उसे मिटानेका प्रयत्न करना। हमारा जो उदयप्रसंग है उस उदयप्रसंगमें जो विपरीत प्रयोगका परिणमन हो रहा है उसे अविपरीत करनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। क्या कहा? इसप्रकार जब आत्मज्ञान होता है तब इसके फलस्वरूप सर्व क्लेश और सर्व दुःखसे रहित ऐसे मोक्षकी प्राप्ति होती है जो कि निजस्वभावस्वरूप है। ऐसा मोक्ष यह कैसा है? कि आत्माका जैसा स्वरूप है ऐसा ही मोक्षमें प्रगट होता हैं। यह निजस्वभावस्वरूप है। अपने स्वरूप और स्वभावसे तनिक भी विपरीत नहीं है या अन्यथा प्रकार नहीं है। विपरीत भी नहीं है और अन्यथा भी नहीं है। स्वरूप जैसा ही मोक्ष है। स्वरूप सदृश्य मोक्ष है। यह बात केवल सत्य है। यानी कि आत्मज्ञानसे ऐसा संपूर्ण दुःखरहित मोक्षपदकी प्राप्ति होती है यह बात पूर्णतः सत्य है। गारंटेड बात है, ऐसा कहते हैं। पूर्ण सत्य माने जिसे आत्मज्ञान होगा उसका मोक्ष निश्चित ही होगा। संसारके सर्व दुःखोंसे वह जीव छूट जायेगा, यह बात निश्चित है! केवल सत्य है

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १२ पर..)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५१, अंक-३२५, वर्ष-२७, जनवरी-२०२५

श्रावण शुक्ल १०, बुधवार, दि. २७-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका प्रवचन अंश, गाथा-१०६ से १०८ प्रवचन-४५

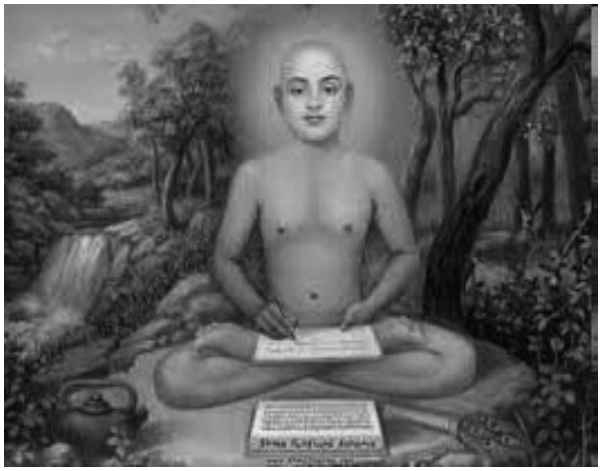

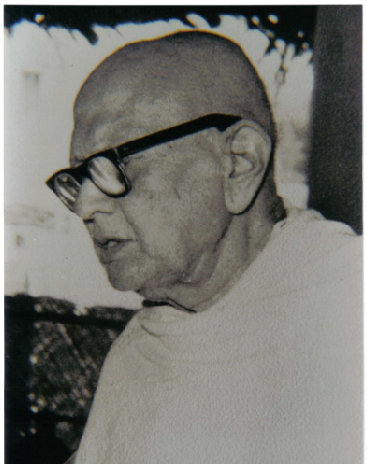

भगवान आत्मा के आनन्द से बाहर निकलने पर जो शुभाशुभपरिणाम होते हैं, उसका फल संसार है। वह समस्त संसार दुःखरूप है। समझ में आया? सर्वार्थसिद्धि का भव करना, वह भव भी दुःखरूप है। समझ में आया? तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध होना, वह भाव भी दुःखरूप है - ऐसा कहते हैं, हाँ! अरे... भगवान! आनन्दसागर में से निकलना, (उसमें) चार गति का भय है कि अरे! यह मुझे न हो। यहाँ पर कहेंगे, हाँ! योगीन्द्राचार्य मुनि ने आत्मा को समझाने के लिए.... आत्मा को समझाने के लिए। एकाग्रचित्त से इन दोहों की रचना की है।

ग्रन्थकर्ता योगीन्द्राचार्य ने प्रगट किया है कि उन्होंने अपने ही कल्याण के निमित्त से इन दोहों की रचना की है। दोहा कहे, उनमें से फिर (लोग) निकालते हैं देखो! इन्होंने दोहे रचे हैं या नहीं? भाई! यहाँ तो निमित्तपने हुआ, उसकी बात करते हैं। वह रजकण की दोहे की पर्याय तो अनन्त स्कन्ध की स्वतन्त्र हुई है। लिखा परन्तु यह लिखने का क्या आशय है? यह समझना चाहिए न! अरे... भगवान! क्या हो? 'यह कहा' देखो... स्वयं कह गये हैं कि किसी का - रजकण का कर्ता आत्मा नहीं है। कर्ता-हर्ता आत्मा एक रजकण की पर्याय का नहीं है और दोहा (कहे) दोहे मैंने किये... यहाँ तो दोहे के रचना काल में मेरा एक विकल्प जो था, निमित्त था उसमें मैं था - ऐसा बताते हैं। मैं तो उसके ज्ञान में, विकल्प के ज्ञान में मैं हूँ। विकल्प में नहीं तो उसमें - पर की पर्याय में मेरी पर्याय स्पर्शित हुई है और हुई है (-ऐसा नहीं है)। आहा...हा...! समझ में आया?

शब्द में ताकत है स्व-पर वार्ता कहने की। यह शब्द उसरूप परिणमे हैं। भगवान आत्मा का भाव वहाँ स्पर्श नहीं होता। (कोई ऐसा पूछे कि) तब ऐसा ही भाव कैसे आया? परमाणु की ऐसी पर्याय उसके स्वयं के भावरूप परिणमित होने की है। क्या आत्मा का भाव वहाँ उसे छूता है? आत्मा की पर्याय वहाँ संक्रमित होती है रजकण की पर्याय में? कर्ता नहीं, भाई! जहाँ विकल्प उत्पन्न हुआ, उसका भी कर्ता नहीं, वहाँ दोहे की रचना (का कर्ता कहाँ से होगा)? मात्र रचना के काल में मेरी यह भावना थी, उसमें यह हुआ। इसलिए दोहे बनाये - ऐसा कहा जाता है, ऐसा है।

मुमुक्षु - लिखा तो सही न।

उत्तर - लिखा यही तो विवाद है न।

मुमुक्षु - अकर्ता है तो लिखे किस प्रकार?

उत्तर - कर्ता है नहीं तीन काल-तीन लोक में। भगवान आत्मा का स्वभाव, विभाव का कर्तृत्व भी जिसके स्वभाव में नहीं है। ऐसा कोई गुण नहीं कि विकार को करे। भगवान आत्मा, राग का अकर्तास्वभाववाला उसमें गुण है। समझ में आया? यह उसमें शक्ति है। सैंतालीस (शक्तियों में) अकर्तापने की शक्ति है। अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, पर का, हाँ! आहा...हा...! राग को और भोग को, विकार को, अनुभव करना - ऐसा कोई गुण नहीं है। गुण हो तब तो त्रिकाल राग का कर्तृत्व खड़ा रहेगा और कभी मुक्ति नहीं होगी, सम्यग्दर्शन नहीं होगा। उसका गुण-धर्म यदि दुःख भोगने का हो, तब तो दुःख से मुक्त अर्थात् दुःख से मुक्त जैसा स्वरूप है, वह सम्यग्दृष्टि को दृष्टि में आयेगा ही नहीं। सम्यग्दर्शन ही नहीं होगा। भाई! ऐसी बात है। आत्मा और आत्मा का कोई गुण कर्ता-भोक्ता है ही नहीं। ऐसा भी यहाँ परमाणु की पर्याय का रचना काल में एक यह ज्ञान ऐसा था कि ऐसा होता है। इससे उन्हें मैंने रचे - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं कि - वे कहते हैं कि मुझे संसार भ्रमण का भय है। सन्त भवभीरु थे। भगे, तीर्थंकर जैसे तीन ज्ञान के स्वामी भी संसार को पीठ देकर भगे। आहा...हा...! जैसे अग्नि सुलगती हो और पीछे बाघ आता हो और मनुष्य भागे... आग लगी, आग। यह चार गति के भव और भव का भाव दुःखरूप है। वे भय को प्राप्त हुए हैं। स्वर्ग के सुख से भय को प्राप्त हैं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, संसार में आत्मा को अनेक प्राण धारण करके अनेक कष्ट सहन करना पड़ते हैं, वहाँ परम निराकुल सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

मिथ्यात्व का गाढ़पना रहता है, जिससे प्राणी अपने आत्मिक अतीन्द्रिय सुख को नहीं पहचानता। मिथ्यात्व का पागलपन, जब पागलपन है, भ्रमणा है। शुभभाव में लाभ, पाप में मजा, संयोग अनुकूल हो तो सुविधा बहुत, प्रतिकूल हो तो हैरान-हैरान (हो गये) - ऐसा मिथ्यादृष्टि का भाव पागलपन है। जिससे प्राणी अपने आत्मिक अतीन्द्रिय सुख को नहीं पहचानते, इन्द्रियसुख में आसक्त होकर रहते हैं। वह तो इन्द्रिय के लोभी रहते हैं। समझ में आया? और विषय-भोग की इच्छा अथवा लोक के सुख की इच्छा है तो उसके निमित्त अनुकूल हों, उसका प्रेम उसे हटता नहीं है; प्रतिकूल हो उसका द्वेष हटता नहीं है। कोई अपने इन्द्रिय-विषय का प्रेमी को इन्द्रिय-विषय में विघ्न करनेवाला हो, उसके प्रति द्वेष हुए बिना नहीं रहे। मानता है न यह कि यहाँ से मुझे मिलता था। समझ में आया? और उसमें विघ्न करनेवाला होता है कि यह कहाँ से अभी आया? और उसके अनुकूल सामग्री साधनवाले पर उसे राग होता है।

मिथ्यादृष्टि ज्ञेय के दो भाग करके - इष्ट-अनिष्ट के भाग करके, मिथ्यात्व के राग-द्वेष करता है। ज्ञेय के भाग हैं ही नहीं। ज्ञेय तो जाननेयोग्य सब चीज एकरूप ही है। उसके सब अनुकूल, उसके सब प्रतिकूल - यह वस्तु कहाँ है? वस्तु में नहीं और ज्ञेय

में नहीं। ज्ञेय में है - ऐसा स्वभाव? इष्ट होने का, अनिष्ट होने का - ऐसा वस्तु का स्वभाव है? समझ में आया?

कहते हैं, जिसकी चाहना रहती है, वह रोग है। इच्छा की जलन होना वह एक प्रकार का रोग है। आहा...हा...! विषय की अर्थात् बाहर की अनुकूलता में उल्लसित वीर्य स्फुरे, वह रोग है, रोग है। निरोग भगवान आत्मा, उसमें वह रोग है। उस रोग को जीतने का उपाय भगवान आत्मा की शरण है। आचार्यदेव प्रगट करते हैं कि मुझे संसार का भय है अर्थात् मैं राग-द्वेष-मोह के विकार से भयभीत हूँ। देखो, राग-द्वेष से भयभीत है, यह आकुलता... आकुलता दुःख है। मैं उसमें पड़ना नहीं चाहता। मैं राग -द्वेष में पड़ना नहीं चाहता। मैं राग-द्वेषरहित स्वभाव है, उसमें रहना चाहता हूँ। समझ में आया? अन्तिम श्लोक है न!

आत्मिक आनन्द का ही स्वाद लेना चाहिए। निराकुल अतीन्द्रिय सुख को भोगना चाहिए। आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इस ग्रन्थ के भीतर आचार्य ने इसी शुद्ध आत्मा की भावना कर अपने आत्मा का हित किया है। अध्यात्मतत्त्व का विवेचन परम हितकारी है, आत्मिक भावना का हेतु है। लो! यद्यपि ग्रन्थकर्ता ने अपने ही उपकार के लिए ग्रन्थ की रचना की है, तथापि शब्दों में भावों की स्थापना करने से व उनको लिपिबद्ध करने से पाठकों का भी परम उपकार किया है। समझ में आया? यह ग्रन्थ की बात की है, लो!

फिर अन्त में समयसार का कलश, तीसरा दिया है। आचार्य कहते हैं कि निश्चय से मैं शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति का धारक हूँ। अमृतचन्द्राचार्य!

परपरिणतिहेतोर्मोहना नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्य व्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते,
र्भवतु समयसारव्या ययैवानुभूतेः।। ३।।

अब, यह टीका करने में मेरा लक्ष्य तो आत्मा की एकाग्रता का है। इस टीका के काल में मेरी शुद्धि बढो - ऐसी जो भावना है, वह आत्मा की भावना है, ऐसा। अनादि काल से मेरी अनुभूति, विभावपरिणामों की उत्पत्ति के कारण मोहकर्म के उदय के प्रभाव से राग-द्वेष से निरन्तर मैली हो रही है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि पर्याय में कर्म के निमित्त में लक्ष्य जाने से मेरी पर्याय उसके भाव से मलिन हो रही है।

मैं इस समयसार ग्रन्थ का व्याख्यान करके यही याचना करता हूँ कि यही मेरी अनुभूति परम शुद्ध हो जावे,... लो! ग्रन्थ पूर्ण करने का यह फल... देखो! तब दूसरे क्या कहते हैं? देखो! यह शास्त्र-ग्रन्थ करते-करते जो विकल्प उठता है न, वह निर्जरा का कारण है। इस गाथा का ऐसा अर्थ करते हैं। परपरिणति... अरे... प्रभु! यह शब्द तो निमित्त से कथन है। उस समय मेरा स्वभाव तरफ का ऐसा अभेद, ऐसा एकाकार - ऐसा जो मेरा झुकाव है, वह इस विकल्प के काल में झुकाव इस ओर विशेष वर्तता है, उससे मेरी शुद्धि होओ, उसमें ऐसा कहा है कि यह टीका करते हुए मेरी शुद्धि होओ। ऐसे कथन कुछ और भाव कुछ... समझ में आया?

वीतरागी हो जावे, परम शान्तरस से व्याप्त हो जावे, समभाव में तन्मयता हो जावे, संसारमार्ग से मोक्षमार्गी हो जावे। लो! इस टीका के काल में मेरा यह होओ - ऐसी आचार्य भावना करते हैं।

मंगलमय अरहन्त को, मंगल सिद्ध महान।
आचारज पाठक यती, नमहुँ सुख दान।।
परम भाव परकाश का, कारण आत्मविचार।
जिस निमित्त से होय सो, वंदनीक हरबार।।

पाठक अर्थात् उपाध्याय। फिर पाँच मांगलिक करके अरहन्त भगवान आदि मंगलकारी हैं, भगवान हैं। ये पाँचों मंगलिक हैं। परमभाव प्रकाश कारण आत्मविचार है। यह आत्मा का अनुभव, वह परमभाव परमात्मा का प्रकाश करने का कारण है - ऐसा कहकर यह ग्रन्थ पूर्ण किया है।

(मुमुक्षु : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पूज्य गुरुदेवश्रीके 'परमागमसार'में से चुने हुए कुछ एक वचनामृत

यह शास्त्र तो परमार्थ स्वरूप और वैराग्य उत्पादक है । समयसार शास्त्र परमप्रभु परमात्माको बताने वाला है व पर की तरफसे उदासीन कराने वाला है । निज पूर्ण स्वरूपको प्राप्त ऐसा जो परमार्थ स्वरूप (आत्मा) को बतलाने वाला व विकल्पसे उदासीन कराने वाला यह समयसार शास्त्र वैराग्य-प्रेरक है । १९

*

मात्र जानना-जानना-जानना, ज्ञाता-ज्ञाता-ज्ञाता मेरा स्वरूप है । किसीका कुछ कर सकूं, ऐसा मेरा स्वरूप नहीं है । मात्र द्रव्यको विषय करना ही जिसका प्रयोजन है ऐसे द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यस्वरूप तो चिनमात्र चैतन्य मात्र ही है । २०

*

प्रश्न : - यदि (स्वभाव और विभाव) दोनों भिन्न ही हैं तो भिन्न करनेके साधनकी बात ही कहाँ रही ।

उत्तर : - भिन्न होने पर भी भिन्न माना कहाँ है ? इसलिये भिन्न करनेके साधन क्या है, वे यहाँ समझाते हैं । जिस ज्ञानकी वर्तमान दशाकी विकारके साथ एकता है वह ज्ञानकी पर्याय (जब) अन्तरमें ढलती है तब वह भगवतीप्रज्ञा है और यह भगवतीप्रज्ञा ही साधन है । वस्तु साधन नहीं परंतु उसकी प्रज्ञादशा साधन है । कर्ता, करण गुण हैं परन्तु निर्मल पर्याय साधन है । २१

*

जाननपर्याय और जाननगुण - ऐसे लक्षण द्वारा आत्मा जाना जा सकता है । यह एक ही उपाय है अन्य कोई उपाय नहीं । जहाँ जहाँ जाननपर्याय है, वहाँ वहाँ अनन्त पर्यायें हैं और जहाँ जहाँ जाननगुण है, वहाँ वहाँ अनन्त गुण हैं और वही आत्मा है, ऐसा निश्चय करना चाहिये । २२

*

भाई ! शरीरके संसर्ग और परसे उत्पन्न होनेवाले विकल्पों को तू भूल जा । अनन्त ज्ञान आदि अनन्त शक्तियाँ रागको स्पर्श नहीं करती बल्कि, एक समयकी पर्यायको भी नहीं स्पर्शती - तू ऐसा अनन्त ज्ञानमय और परम आनन्द स्वभावी है - ऐसा दृष्टिमें स्वीकार कर । पांच इन्द्रियोंकी ओरका प्रेम है, वही आनन्दका क्षय करनेवाला और शान्तिको

जलानेवाला है। २३

*

भाई ! तूझे सम्यक् (प्रकार) देखना हो तो तू भगवान स्वरुप है, इसका स्वीकर कर। मिथ्यात्व राग-द्वेषके कालमें भी जैसा इसका परमार्थ स्वरूप है उस रीतीसे देखे तो शक्तिरूपसे परमात्मस्वरूप ही विराजमान है । २४

*

निश्चय दृष्टिसे प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है । जिनवर और जीवमें अन्तर नहीं - चाहे वह एकेन्द्रियका जीव हो अथवा स्वर्गका जीव हो, यह सब तो पर्यायमें है, वस्तुस्वरूपसे तो परमात्मा ही है । जिनकी दृष्टि पर्यायसे हट कर स्वरूप पर गई है वे तो स्वयंको भी परमात्मस्वरूप (ही) देखते हैं, और प्रत्येक जीवको भी परमात्मस्वरूप ही देखते है । सम्यग्दृष्टि सब जीवोंको जिनवर (रूपसे) जानते हैं और जिनवरको जीवस्वरूपसे जानते हैं। अहा! कितनी विशाल दृष्टि ! अरे, यह बात स्वीकार हो तो कल्याण हो जाय परन्तु ऐसी श्रद्धाकी अवरोधक मान्यतारूपी गढ़का पार नहीं । यहाँ तो कहते हैं कि बारह अंगका सार तो यह है कि जिनवर समान आत्माको दृष्टिमें लो, क्योंकि आत्माका स्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। २५

*

जो जीव रागके अवलम्बन बिना शुद्ध त्रिकाली वस्तुका सीधा अनुभव करता है, उसने शुद्ध जीव वस्तुको उपादेय किया है ''ज्ञानको ज्ञान द्वारा वेदन करना'' इसको प्रत्यक्ष अनुभव कहते हैं । २६

*

प्रश्न :- ज्ञानमें राग जाननेमें आता है। परन्तु ज्ञानमें राग एकमेक होता है, ऐसा क्यों लगता है ?

उत्तर :- भेदज्ञानके अभावसे अज्ञानी राग और ज्ञानकी अति निकटताको देखकर उनको एकमेक मानता है परन्तु राग और ज्ञान एकमेक नहीं । २७

*

जीव जिनवर है और जिनवर जीव है, ऐसी दृष्टि होने पर पर्यायबुद्धि छूट जाती है। सम्यक्दर्शन प्रगट करनेके लिये कितने ही गढोंको पार कर अन्दर जाना पड़ता है । व्यवहारमें कितनी ही प्रकारकी योग्यता हो, संसारभाव तनिक भी न रुचे, आत्मा-आत्माकी ही धुन लगे तब सम्यग्दर्शन होता है । २८

*

निर्विकल्प होनेवाला जीव, निर्विकल्प होनेके पूर्व ऐसा निर्णय करता है कि मैं कभी भी रागादि भावरूप परिणमनेवाला नहीं हूँ । परन्तु ज्ञानदर्शन रूप परिणमनेवाला हूँ । अभी रागादि भाव होंगे-ऐसा जानाता है, फिर भी मैं उनका स्वामीरूप होनेवाला नहीं । मेरा ऐसा प्रयत्न है कि मुझे भविष्यमें सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होंगे फिर भी उस समय राग भी रहेगा, परन्तु मैं उसरूप परिणमनेवाला नहीं- ऐसा निश्चत है । (प्रथम) निर्णय करता है पर्यायमें, बादमें अनुभव होगा पर्यायमे। परन्तु वह पर्याय ऐसा निर्णय करती है कि मैं तो चिन्मात्र अखण्ड ज्योति स्वरूप हूँ, पर्याय नहीं। २९

परमागमसार बोल-२४० पर पूज्य भाईश्री शशीभाईका प्रवचन

(इस जीवन काल में) धन उपार्जन की वृत्ति तो आत्मघात ही है। वास्तव में यह तो आत्मलाभ का अवसर है - आत्मा के आनंद की कमाई का अवसर है, इसे न चूके। २४०.

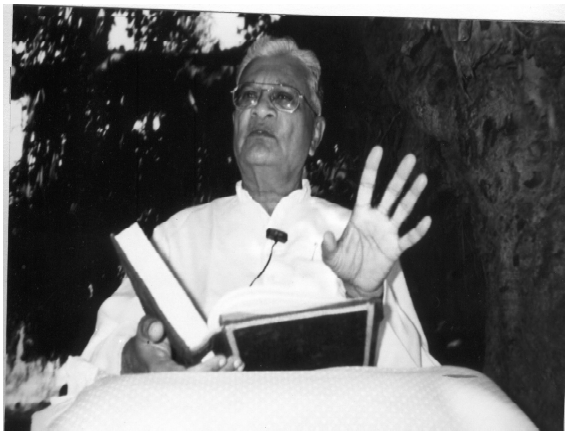

(परमागमसार बोल) २४०। **'(इस जीवन काल में) धन उपार्जन की वृत्ति तो आत्मघात ही है।'** दुनिया से उलटी बात है। गुरुदेवश्री कहते थे कि यह तो सारी दुनिया के सामने बगावत है। सारा जगत एक ही दिशा में झुका हुआ है, दुनिया की दौड़ जिस दिशा में है इससे बिलकुल उलटी यह बात है, ठीक !

'धन उपार्जन की वृत्ति तो आत्मघात ही है।' आहा...! लोगों को सर्वस्व हो चुका है। ऐसे तो लगता हैं कि जैसे वह सर्वस्व हो और सर्वस्व जानकर आँखें बंद करके कितना अहित हो रहा है (यह भी देखे बिना) काम कर रहे हैं।

आखिर में सब आत्मा ही हैं न ! निर्दोष परमात्मा है इसलिए सबको खयाल तो आता है। चाहे कैसा भी अकर्त्तव्यरूप कार्य करता हो उस जीव को भी खयाल तो आ ही जाता है कि यह अच्छा तो नहीं है। क्योंकि प्रसिद्धरूप से कुछ एक कार्य तो अच्छे हैं ही नहीं। इसमें न्याय से तोलन करने की भी जरूरत नहीं है। वह विवादास्पद विषय ही नहीं है। ऐसे कार्य करनेवाले को भी भीतर में conscious bite तो करता है ऐसा हमलोग नहीं कहते हैं ? यानी कि निर्दोष परमात्मा उसका प्रतिकार करता है। फिर भी इसके सामने आँख मीचकर, उपेक्षित होकर - आत्मा की आवाज़ से उपेक्षित होकर जो संसार के कार्यों में वेगपूर्वक जुड़ता है (उसे) कहते हैं कि, यह तो तेरे मरने का काल है ! जीव को वह जन्म-मरण का कारण है, परिभ्रमण का कारण है। दृष्टांत उत्कृष्ट लिया है।

कमाने का समय है वह तो मरने का काल है। **'वास्तव में यह तो आत्मलाभ का अवसर है।...'** यह तो अलग ही कमाई करने का अवसर है। मनुष्यभव मिला यह तो आत्मलाभ का अवसर है। **'आत्मा के आनंद की कमाई का अवसर है, इसे न चूके।'** ऐसी (बात) है।

जैसे सामान्यरूप से - लोकोक्ति में ऐसा कहा जाता है कि, भाई ! यह तो कमाई का मौसम है। कमाई का मौसम है और अभी तो खाना, पीना, आराम व अन्य व्यवहारिक कार्य, सबको गौण करके ज़ोर शोर से कमाई के प्रयत्न में लग जाना चाहिए। बाद में दूसरा जो करना होगा करेंगे परंतु एक बार कमाई कर ले ! ऐसी जो अपने सुख की, अनुकूलता और लाभ की वृत्ति के पीछे एक दफा

वर्तमान सारी प्रतिकूलताओं को गौण करके यह लाभ पाने के लिए जीव तत्पर होता है, प्रयत्नवंत होता है।

इससे भी अधिक यह बात थोड़ी विशेष इसप्रकार है कि जिस किसी जीव की बुद्धि में इस बात का सही तोलन हुआ हो, ऐसी तुलना हुई हो कि अनंत संसार मिटने का यह कारण है, सादि अनंत-अनंत समाधि सुख में रहने का यह कारण है, सर्व काल पर्यंत दुःख मिटने का और सुख की कमाई का यह एक मूल कारण है, जिसकी कीमत कर ली हो, जो आगे २३८ बोल में आ चुका कि, जिसकी कीमत की होगी वह नहीं छूटेगा; - ऐसी विचार की भूमिका में उसने कीमत की होगी तो वह सर्व प्रथम यह सोचेगा कि, पहले चाहे किसी भी कीमत पर एक बार आत्मज्ञान तो कर ही लूँ ! जन्म-मरण का नाश हो और जन्म-मरण का छेद हो उस मार्ग में प्रवेश तो मैं कर ही लूँ ! जब मैं मार्ग से बाहर हूँ तो एक बार मार्ग में प्रवेश तो कर ही लूँ ! आगे पूर्णता पर्यंत का विशेष-विशेष कार्य भी अभी करना है यह खयाल में है परंतु कम से कम इसमें प्रवेश तो कर ही लेना चाहिए। जिससे कि जन्म-मरण की जो अनंतता है, अनंतानुबंधी कषाय की जो अनंतता है, कर्मबंधन की परंपरा की जो अनंतता है उस अनंतता का तो छेद हो जाए। वह अंत की मर्यादा में आ जाए। फिर उसे खतम करना (इतना मुश्किल नहीं है)।

इतना महान इसका फल है ! इतना बड़ा फल है (ऐसा जब लगता है) तब जीव अन्य सर्व कार्यों को गौण करके, पूरे संसार को लात मारकर, वृत्तिमें से तो पूरे संसार को लात मारकर, 'जगत इष्ट नहीं आत्मथी' - इस वृत्ति में आकर स्व-कार्य के अंतरंग पुरुषार्थ में (लगता है।) उसे ऐसा लगता है कि यह तो कमाई का (अवसर है)। आत्मा के आनंद की कमाई का अवसर है, ऐसा लगता है। बाहर में धन कमाने का काल नहीं (लगता)।

एक दूसरा भास इसमें होता है। उसे लगता है कि, अभी तो मुझे यह मनुष्यभव मिला है, मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ, यह मनुष्यदशा हुई साथ ही सन्मार्ग के समीप आना भी हुआ है, यह सन्मार्ग है, सत्यमार्ग यही है, यहाँ तक पहुँचना - समझना जब हुआ है तो निश्चितरूप से यह भव भव के अभाव हेतु ही मिला है !! ऐसा भीतरमें से भास हो जाना चाहिए कि अब मेरा भव-भ्रमण खतम होनेवाला (है, यह) बात निश्चित है। इसीलिए ये सारी की सारी परिस्थिति का निर्माण हुआ है। वरना ऐसी परिस्थिति कहाँ से होती ! ऐसा जीव को लगना चाहिए।

जैन दर्शन में चाहे अजैन दर्शन में धर्म के क्षेत्र में तो अनेक जीव प्रवृत्ति कर रहे हैं, लेकिन जैन दर्शन में आये हुए को भी सन्मार्ग आसानी से प्राप्त नहीं होता है, जबकि अजैन दर्शन में तो मार्ग है ही नहीं (इसलिए) प्राप्त होने का प्रश्न नहीं है। तो फिर मुझे सन्मार्ग मिला - यह सन्मार्ग है ऐसा मुझे जानने मिला, मेरी श्रद्धा और ज्ञान के समक्ष यह बात जब आयी है तो मुझे भीतर में ऐसा भासित होना चाहिए - प्रतीति आनी चाहिए कि, वास्तव में मेरा हित करने का एकदम ठीक समय और मौका मुझे मिल गया है, अतएव अब मैं आत्मा का आनंद नहीं मिले तब तक हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठूँगा ! इतना भीतरमें से संवेग आए, इसकी उत्कंठा खड़ी हो, जब तो वह चूकेगा नहीं, वरना जीव मनुष्यभव

को चूक जाता है। यह परिस्थिति उत्पन्न होती है। ये सब तो संकेत किए हैं !

गुरुदेवश्री ने ये सारे संकेत किये हैं कि अपने हित के मार्ग पर चढ़नेवाले जीव के परिणाम कैसे-कैसे होते हैं ? कैसे परिणाम होते हैं उसके ? परिणमन की योग्यता में ऐसी कई सारी बातें हैं। परंतु इसमें से कुछएक बातें प्रसिद्ध कर गये हैं।

उस जीव को ऐसा नहीं लगता कि यह धन कमाने का काल है। क्या करें ! हमारा व्यवसाय जो है। व्यवसाय तो मान लीजिए आजीविका का साधन न हो तो करना पड़े वह एक अलग बात है। परंतु परमार्थ मार्ग को गौण करके एकाकार होकर उस प्रवृत्ति में लग जाए, यह तो उचित नहीं है। अरे ! इतना ही नहीं, जिसको इस मार्ग की कीमत आयी है उसे तो प्रवृत्ति करनी पड़ती हो तो भी उस प्रवृत्ति में संक्षेप करके, प्रवृत्ति को कम करके इस मार्ग में अपना प्रयत्न करने का समय वह निकाल लेता है। चाहे कैसे भी प्रतिकूल संयोगों के बीच, चाहे कैसे प्रतिकूल उदय में भी वह अपना कार्य करने का समय निकाल लेता है। ऐसा है।

समय की बहुत कीमत है। वैसे तो समय कभी पूरा होनेवाला नहीं है। जीव अनंतकाल पर्यंत रहनेवाला है। अतः वैसे तो समय की कोई कमी नहीं है परंतु यहाँ वह बात नहीं है। वरना कोई तो ऐसा कहेगा कि हमें तो समझ में आया है कि हमारा आत्मा शाश्वत है - शाश्वत पदार्थ है, तो सामने कार्य करने का काल भी शाश्वत है, (अतः) कभी भी हम कर लेंगे। यह बात मार्ग को अनुकूल नहीं, अपितु प्रतिकूल है। ऐसा है।

ऐसे काल में इतनी ऊँची-ऊँची बात को कैसे अंगीकार किया जाए ? हम (तो) रहे साधारण। पूजा-भक्ति कर ले, दया-दान कर ले बाकी इतना ऊँचा कार्य हम कैसे कर सकते हैं ? कहते हैं कि वह आत्मा स्वरूप की चाह मिटानेवाला बहिरात्मा है। यानी कि तुम्हारे बहिरात्मपने का जोर बहुत है। वैसे बहिरात्मा तो अनादि से है किन्तु (अभी) जब अंतर्मुख होने का विषय सामने आया तब उसे दूर किया, अनादर किया ! और वह भी उसे अच्छा कहकर !! जगत में ऐसी एक कुटिल नीति है कि पहले मान-सन्मान देकर फिर मारना। क्या करते हैं? मान-सन्मान देकर मार डालते हैं। उसे 'मान देकर मार डालना' ऐसा कहते हैं। वह सब कुटिल नीति हैं। उसे कूटनीति कहते हैं। भीतर में आशय (मलिन) होता है, वह ऐसे कि बहुमान करने योग्य हो चाहे नहीं हो अपने तो मान देते रहो ! फिर उसे लूट लेंगे!! जिसको दान प्राप्त करना होगा वह दान ले लेगा, जिसको और कोई काम करवाना होगा वह काम करवा लेगा।

वैसे यहाँ कहेगा कि, आपकी बात तो बहुत ऊँची है मारो धक्का ! लेकिन रखो बाजू पर ! हमारे काम की नहीं है। हम तो रहे साधारण लोग ! यह कुटिल नीति है। जिसमें बहिरात्मपने का ज़ोर है। 'अनुभवप्रकाश'में श्री दीपचंदजी यह बात कर गये हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का आनंद कमाने का यह काल है। ऐसा तुझे अपने लिए भासित होना चाहिए और इसी उद्देश्य से तेरी संशोधकवृत्ति पूरी शक्ति से काम करनी चाहिए। एक बार पूरा इसके पीछे लग जाए फिर अपना कार्य निश्चित न हो ऐसा किसी काल में - तीन काल में बनने योग्य नहीं है। कभी ऐसा बनता ही नहीं। इसलिए कहा कि **'इसे न चूके।'** यह २४० बोल पूरा हुआ।

सत्संग कब विफल हो?

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

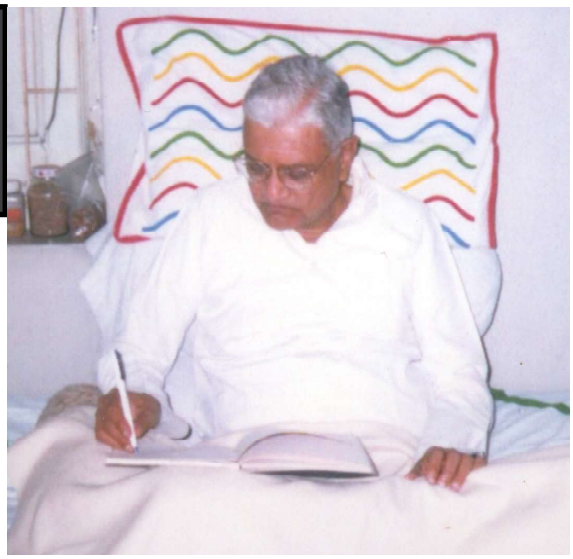

सत्का प्रगट अनुभव–दशा जिन्हें वर्तती हो ऐसे पुरुषका समागम – वह सत्संग है। जो कि अति दुर्लभ है; फिर भी ऐसा सत्संग भी निष्फल जाये ऐसे कारणरूप परिणामोंका जब जीव सेवन करता है तब रत्न चिंतामणी जैसा मनुष्यभव गँवा देनेका – हार जानेका बनता है । ऐसे सत्संगके निष्फल जानेके कारण निम्न प्रकारसे हैं :–

(१) मिथ्या आग्रह :– जीवने भूतकालमें अनादिसे मिथ्या अभिप्रायका सेवन किया है । उसका आग्रह सत्संग प्राप्त होनेके बावजूद भी नहीं छोड़ना – वह मिथ्या आग्रह है । संक्षेपमें उसका स्वरूप इस प्रकारसे है कि जिस आग्रहके वशात् 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसी अंतर सावधानी उत्पन्न नहीं होती, और परकी सावधानीरूप परिणामोंकी अधिकाई – वजन रहा करता है । प्रशस्त क्रिया – परिणामोंका आग्रह भी चैतन्य स्वरूपकी सावधानी होने नहीं देता, वह (भी) मिथ्याआग्रह है । सर्व प्रकारके मिथ्याआग्रह छूट जानेका निमित्त 'सत्संग' है । फिर भी अगर जीव वहाँ भी मिथ्याआग्रहको नहीं छोड़ता है, तो प्राप्त हुआ सत्संग भी निष्फल जाता है । फिर तो मिथ्याआग्रह छूटनेके लिये और कोई कारण–साधन नहीं रहता।

(२) स्वच्छंदीपना :– दोषितभावोंके पक्षपातमें, दोषमें ममत्व होनेसे स्वच्छंद उत्पन्न होता है । यह स्थिति सत्संगको निष्फल करनेवाली है । दोषितभावके पक्षपातमें दोषकी रुचि काम करती है; अत: उसके अभावका प्रयत्न नहीं होता । इतना ही नहीं बल्कि स्वच्छंदी जीव दोषको गौण करता है अथवा अपेक्षावादके बहाने दोषका बचाव / रक्षा करता है। सर्व अन्यभाव दोषरूप होने पर भी उसमें उत्साहपूर्वक – सावधानीपूर्वक प्रवर्तन करना, यह भी स्वच्छंदका सूक्ष्म प्रकार है । 'मैं ज्ञानमात्र हूँ' ऐसी स्वरूपकी सावधानीके अभावमें – उक्त प्रकारसे स्वच्छंदका जन्म होता है । यह दोष तीव्र होने पर मानप्रकृत्ति जोर करती है । तीव्र होने पर देव, गुरु, शास्त्र व सत्पुरुष प्रति अविवेक भी होने लगता है । स्वच्छंदी जीवको गुण व गुणवानकी अरुचि होती है। उसकी चाहत उसे नहीं रहती।

(३) प्रमाद :– 'मैं ज्ञानमात्र हूँ' ऐसी सतत जागृतिका अभाव व अन्य भावका रस होना – वह प्रमाद है । प्रमादभावमें कषायरस बहुत भरा है इसलिये सत्संगकी असर नहीं होती ।

(४) इन्द्रियविषयकी अपेक्षा : जड़की अवस्थामें सुखबुद्धि–रसबुद्धि – महिमावंतता होने पर उसकी अपेक्षा रहा करती है – तब जीव निज महिमाको, निज सुखको – स्वभावको भूलता है और स्वभावकी

उपेक्षामें प्रवर्तता है । 'मैं ज्ञानमात्र हूँ'' ऐसी स्वयंकी जागृतिके वक्त – इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थ सुख रहित भासित होते हैं इसके कारण भी व्यामोह नहीं होता। 'मैं ज्ञानमात्र हूँ' ऐसी जागृतिपूर्वक ज्ञानमें–स्वमें इन्द्रियविषयका अभाव भासित होनेसे उसकी अपेक्षावृत्ति–बुद्धि नहीं होती । इन्द्रियविषयकी अपेक्षामें (वासनासे) सत्संगमें प्राप्त बोध नहीं चढ़ता – क्योंकि इन्द्रियविषयके रसमें ज्ञानरसका अभाव है । और ज्ञानमें अर्थात् स्वकी जागृतिसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञानरसमें, इन्द्रियविषयका रस अभावको प्राप्त होता है । जो कि सत्संगका प्रत्यक्ष फल है । सत्पुरुषके प्रति 'अत्यंत भक्ति' विषयवृत्तिके रसको मंद करती है; और 'अत्यंत भक्ति' सहित समागम किया जाता है तो ही सत्पुरुषका बोध परिणमित होता है। और सत्समागममें भक्तिपूर्वक समर्पित होनेसे इन्द्रियों तरफकी वृत्ति शिथिल हो जाती है और तब निजहितका भाव बलवान होता है। इस प्रकार पर विषयका रस – जड़का रस, सत्संग सफल होनेमें प्रबल अवरोधक – प्रतिबंधक कारण है ।

(५) अपूर्व भक्तिका अभाव :– सत्संगके दाता, ऐसे ज्ञानी – परमपुरुष – परमात्माके प्रति अपूर्व भक्तिके अभावके कारण ही आगे कहे हुए चारों प्रकारके दोष सहज उत्पन्न हो जाते हैं । जिसे अपूर्व भक्ति वर्तती है वह जीव संसार तिर जाता है । अतः ज्ञानीके योगको परम हितकारी जानते हुए, परमप्रेमसे, सर्वार्पणबुद्धिसे, सर्व संयोगोंको गौण करके उस योगकी उपासना कर्त्तव्य है । और तो ही ज्ञानीसे प्राप्त बोधका परिणमन होता है, अन्यथा परिणमन नहीं हो सकता (बल्कि) सिर्फ शुष्क धारणा रह जाती है, यह वस्तुस्थिति है । वास्तवमें तो ज्ञानीपुरुषकी पहचान होने पर पात्र जीवको इस प्रकारकी अपूर्व भक्ति जागृत हो ही जाती है, हुए बिना नहीं रहती । ऐसी भक्ति जो है वह सिर्फ प्रशस्त रागवृद्धिरूप नहीं है परन्तु प्रगट सत्का ही मूल्यांकन है, जिसके कारण दर्शनमोह दृढ़ हो ऐसे दोष उत्पन्न ही नहीं होते, बल्कि दर्शनमोह गल जाये, ऐसी परिणामकी परिस्थिति हो जाती है – यह सत्संगमें सन्निहित महान रहस्य है । इसीलिये तो सभी ज्ञानियोंने अपने अनुभवसे जगह–जगह सत्संगका महत्त्व प्रदर्शित किया है । जिसको विवादका विषय बनाकर खिँचना बिलकुल योग्य नहीं है ।

(श्री 'अनुभव संजीवनी' में से साभार उद्धुत, बोल क्र. – १२२)

(पृष्ठ संख्या २ से आगे..)

मतलब निश्चित बात है। इसमें संदेह करने योग्य नहीं है। इतनी हद तक गारंटी दी है। विश्वके किसी भी साहित्यमें जैनदर्शनके अलावा इतनी स्पष्ट बात देखने नहीं मिलेगी। विश्वके किसी भी विज्ञानके साहित्यमें या धर्मके साहित्यमें ऐसी वैज्ञानिक और स्पष्ट बात आपको नहीं मिलेगी। सॉलिड बात है। इसलिये जिसको यह विषय मिलता है वह बहुत भाग्यशाली जीव है। इसमें भी वास्तवमें भाग्यशाली कब? कि इस बातको शिरोधार्य करे तब, उठा ले तब, अमलीकरणमें आ जाये तब। वरना इसी जीवने अनंतबार इसे व्यर्थ गवायाँ है। ऐसी बहुसूल्य बातको भी हमारे जीवने अनंतबार निरर्थक की है!!

(प्रवचनांश...श्री 'श्रीमद् राजचंद्र' , प्रवचन क्र.– ५७७, ३२ मिनट पर)

पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा

मंगलवाणी-सीडी-१४-C

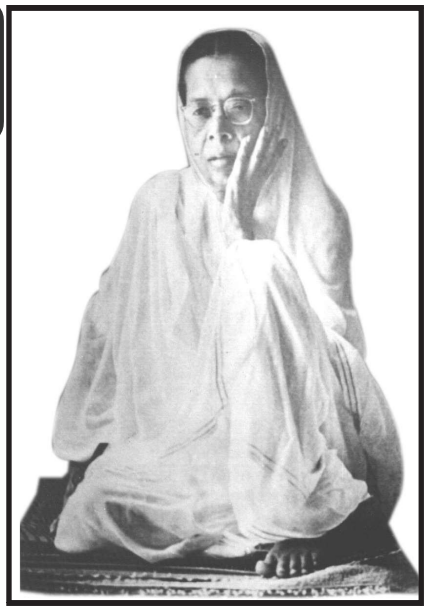

मुमुक्षु :- .. ध्रुव आत्मा ही उपादेय है तो सम्यग्दर्शन शुद्धात्मा को देखता है, तो वह सम्यग्दर्शन उपादेय है?

समाधान :- सम्यग्दर्शन उपादेय है, लेकिन सम्यग्दर्शन का जो विषय द्रव्य है यानी वास्तव में तो ध्रुव उपादेय है। उपादेय अंगीकार करनेयोग्य, द्रव्य को ग्रहण करनेयोग्य है, ध्रुव को ग्रहण करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन तो पर्याय है। पर्याय पर दृष्टि नहीं होती, दृष्टि तो ध्रुव द्रव्य पर होती है। इसलिये वास्तविकरूपसे उपादेय तो परमपारिणामिक स्वभाव आत्मा अनादिअनन्त है वह उपादेय है। सम्यग्दर्शन उपादेय (यानी) सम्यग्दर्शन प्रगट करनेयोग्य है। लेकिन उस पर्याय पर दृष्टि करनेसे पर्याय प्रगट नहीं होती। द्रव्य पर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। इसलिये वास्तविकरूपसे द्रव्य को ग्रहण करनेयोग्य है। परमपारिणामिकभावस्वरूप जो आत्मा है वह आत्मा ग्रहण करनेयोग्य है और आत्मा उपादेय है। उपादेय सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान आदि सब उपादेय है। लेकिन उसपर दृष्टि करनेसे वह प्रगट नहीं होता। ध्रुव उपादेय है। वास्तविकरूपसे ध्रुव उपादेय है। उसपर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता। लेकिन पर्याय, शुद्ध पर्याय, सम्यग्दर्शन प्रगट करनेसे सुख प्रगट होता है, आनन्द प्रगट होता है। सम्यग्दर्शनसे आनन्द प्रगट होता है इसलिये वह भी उपादेय है।लेकिन एकदम शुद्ध दृष्टिसे देखा जाये तो ध्रुव उपादेय है। दोनों अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं।

सम्यग्दर्शन उपादेय है, आत्मा की स्वानुभूति, केवलज्ञान आदि सब उपादेय है। परन्तु वह पर्याय है इसलिये उसपर दृष्टि करनेसे वह प्रगट नहीं होता। दृष्टि, ध्रुवपर दृष्टि करनेसे वह प्रगट होता है। इसलिये ध्रुव उपादेय है। इसलिये कोई अपेक्षासे सम्यग्दर्शन उपादेय है और ध्रुव उपादेय है। दोनों उपादेय है, दोनों अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं। एक व्यवहार है, एक निश्चय है। लेकिन व्यवहार यानी उसप्रकार का व्यवहार नहीं है कि व्यवहार यानी कुछ है ही नहीं, ऐसा नहीं है। वह तो वेदन में आता है, सम्यग्दर्शन की पर्याय तो वेदन में आती है। इसलिये वह उपादेय है। और शुद्ध पर्याय है इसलिये वह उपादेय है, वेदन में आती है। परन्तु उसपर दृष्टि करनेसे (सम्यग्दर्शन नहीं होता)। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा की अनन्त पर्याय जो वेदन में आती है वह ध्रुव को ग्रहण करनेसे होती है, इसलिये ध्रुव उपादेय है। सम्यग्दर्शन उपादेय नहीं है ऐसा नहीं है, वह है, परन्तु वह अपेक्षा व्यवहार की है, यह निश्चय की अपेक्षा है। साधक पर्याय है, साधकदशा है। वह जो है उसका अस्तित्व अनादिअनन्त है। साधकपर्याय है वह अनादिअनन्त नहीं है। यह अनादिअनन्त जो ध्रुव है वह ग्रहण करनेयोग्य है।

मुमुक्षु :- भगवती माता! आत्मा का स्वभाव तो स्वपरप्रकाशक है। तो सम्यग्दृष्टि..

समाधान :- पर यानी पर ज्ञेय के ऊपर उपयोग नहीं है, पर जानने में नहीं आता। परन्तु अन्दर स्वयं है, स्वयं के अनन्त गुण और अनन्त गुणों की पर्याय जानने में आती है। इसलिये वहाँ स्वपरप्रकाशकपना है, उसका नाश नहीं होता। स्वयं जो है, सम्यग्दर्शन स्वानुभूति की जो पर्याय है वह अनन्त गुणों को वेदती है। अपने अनन्त गुण का वेदन जो है वह उसे वेदन में आती है। इसलिये स्वयं स्वयं को जानता है, स्वयं पर्यायों को जानता है। इसलिये स्वपरप्रकाशक.. इसलिये दूसरे गुणों को जानता है, दूसरे गुणों की पर्यायों को जानता है। स्व को यानी स्वयं खुद के.. बाह्य ज्ञेय को नहीं जानता, अंतर में जो ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता सबको स्वयं को अभेदरूपसे जानता है। अपनी अनन्ती पर्यायों को जानता है। अनन्त यानी उस अनन्त के नाम नहीं होते। लेकिन उस अनन्त के वेदन को जानता है।

चैतन्य चमत्कारस्वरूप आत्मा है उसकी अनन्ता, उसकी अनेक प्रकार की पर्यायों को वह जानता है। बाहर आता है तब उपयोग बाहर होता है, वह बाहर का जानता है। लेकिन उसे एकत्व नहीं होता, उससे भिन्न रहकर जानता है।वह ज्ञायक रहता है। ज्ञाता की धारा चलती है और उपयोग बाहर होता है। इसलिये दूसरों को भी जानता है और स्वयं को भी जानता है। इसप्रकार स्वपरप्रकाशक है। अंतर में स्वयं खुद को जाने, स्वयं अपने गुणों को, पर्यायों को जानता है। इसप्रकार स्वपरप्रकाशकपना है। इसप्रकार है। स्वयं अपने वेदन को जानता है, पर्याय है, अपने ज्ञानगुण को जानता है, श्रद्धागुण को जानता है, आनन्दगुण को जानता है। आश्चर्यकारी पर्याय होती है उन सब पर्यायों को जानता है। उसके नाम नहीं होते। उसका अनेक प्रकार परिणमन, आनन्द के तरंग उत्पन्न होते हैं, अनेक जात की पर्याय परिणमति हैं, उसे जानता है। इसप्रकार उसका स्वपरप्रकाशकपना है। अनेक जात की पर्याय उसे स्वानुभूति में परिणमति हैं, उसे वह जानता है। स्वयं को अभेदरूपसे जानता है और पर्यायों को, पर्यायभेद को भी जानता है। सब जानता है। .. दूसरे ज्ञेय आये इसलिये। व्यवहार यानी वह पर को नहीं जानता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वह व्यवहार ऐसा नहीं है कि दूसरा द्रव्य हो गया, दूसरे को जानता है इसलिये व्यवहार यानी कि जानता नहीं, लेकिन वह कहनेमात्र है। ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। जानता है लेकिन दूसरा बाहर का ज्ञेय हुआ इसलिये व्यवहार कहने में आता है।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- अन्दर की लगनी लगनी चाहिये, बाहर का रस हो तो नहीं होता, अन्दर का रस लगना चाहिये। .. तो हो सकता है, लेकिन अन्दर की लगनी चाहिये। शिवभूति मुनि को कुछ नहीं आता था, लेकिन अन्दर की लगनी लगी। गुरुने मातुष और मारुष कहा था वह भूल गये और तुष माष हो गया। फिर उसका अर्थ, वह स्त्री दाल धोती थी, दाल और छिलका भिन्न। मेरे गुरुने ऐसा कहा था, छिलका भिन्न और दाल भिन्न। वैसे अन्दर मैं आत्मा भिन्न और यह शरीर भिन्न, ये विभाव राग-द्वेष सब भिन्न है। मेरा स्वभाव भिन्न है। इसप्रकार प्रयोजनभूत ग्रहण कर लिया तो अंतर में ऊतर गये। उसमें कोई शास्त्र अभ्यास की आवश्यकता नहीं। अन्दर की लगनी की, अन्दर के पुरुषार्थ की आवश्यकता है, अन्दर की रुचि की आवश्यकता है, तो होता है। यथार्थ समझे तो होता है। यथार्थ समझ बिना (नहीं होता)।

आत्मा का अस्तित्व ग्रहण करे तो होता है। अंतर को समझने की आवश्यकता है। अन्दरसे आत्मा भिन्न

है, ज्ञायक है, आनन्दसे भरा है, महिमावंत है, वह कोई अलग ही तत्त्व है ऐसा समझे तो होता है। उसे समझानेवाले गुरु क्या कहते हैं? देवने-जिनेन्द्रदेवने पूर्ण (साधना) की, गुरु साधना करते हैं। शास्त्र में सब बात आती है। गुरु क्या मार्ग बताते हैं? वह खुद ग्रहण करे। उसका मूलभूत प्रयोजन ग्रहण करे तो प्राप्त हो सके ऐसा है।शास्त्र का अधिक अभ्यास करे तो प्राप्त होता है, ऐसा कुछ नहीं है। दिन-रात उसकी लगन लगनी चाहिये। बाहर की रुचि हो, अन्दर में रस हो तो नहीं होता है। अन्दर आत्मा का रस लगना चाहिये। ये सब अंतर में निरस लगे। बाहर का सब निरस लगे, उसकी महिमा छूट जाये। रस, महिमा एक आत्मा की लगे, दूसरी महिमा छूट जाये। पूरा संसार निरस (लगे)। महिमावंत नहीं है, महिमावंत मेरा आत्मा ही है। ऐसा अंतरसे लगे तो होता है। आत्मा के स्वभाव को मूल प्रयोजनभूत पहचाने, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या, पुद्गल क्या, जड़ क्या, इसप्रकार मूल प्रयोजनभूत समझे तो प्राप्त होता है। क्षति है, पुरुषार्थ मन्द हो तो। अन्दर की खरी लगनी लगे तो बारंबार पुरुषार्थ करे। पुरुषार्थ बारंबार करे। अन्दर सच्चा रुचि हो तो बारंबर पुरुषार्थ होता रहे। बारंबार पुरुषार्थ करना। पुरुषार्थ मन्द हो तो। अन्दर की लगनी चाहिये और अन्दर की लगी उसे कहीं चैन नहीं पड़ता। लगी तो लगी, आत्मा की लगन ऐसी लगी कि कहीं चैन नहीं (पड़े)।

मुमुक्षु :- लगनी तो बहुत लगी है परन्तु पुरुषार्थ नहीं चलता।

समाधान :- लगनी लगे और पुरुषार्थ नहीं चले ऐसा नहीं बनता। तो वह लगनी ही नहीं है। लगनी लगी हो, अन्दर तृषा लगी हो तो पानी खोजने का प्रयत्न किये बिना रहे ही नहीं। अन्दर प्यास नहीं लगी, लगे तो, लगनी लगे तो पुरुषार्थ चले। तो मार्ग प्राप्त हुए बिना (रहे नहीं)।

विधि बहुत बतायी है। विधि अन्दरसे प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं। अन्दर लगे तो अन्दरी विधि को खोजे न, लेकिन वास्तविक लगी ही नहीं। विधि एक ही है कि आत्मा को पहचानना, उसके गुणों को पहचानना, वस्तु को पहचानना, आत्मा का अस्तित्व ग्रहण करना, आत्मा कौन है, शाश्वत है, किसप्रकार है, विचारकरके नक्की करे। एकत्वबुद्धि है उससे भिन्न होने का प्रयत्न करे। परमार्थ का पंथ एक ही है, लेकिन स्वयं करता नहीं।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- निर्विकल्प तत्त्व है, आत्मा सबसे भिन्न है, आत्मा कोई अपूर्व है, ऐसे आत्मा को पहचाने तो भव का अन्त होता है। आत्मा की स्वानुभूति करे, आत्मा को भिन्न प्रतीत करे तो होता है। पहचाने तो भव का अन्त होता है। गुरुदेवने ज्ञायक को पहचानने का मार्ग बताया है। तो ही भव का अन्त होता है। आत्मा की मीठास लगनी चाहिये। अन्दर की मीठास लगे, जिसे जिसकी ज़रूरत लगे तो पुरुषार्थ होता है, जरूरत लगती नहीं, मीठास लगती नहीं। बाहर की मीठास लगे तो बाहर का मिले। आत्मा की मीठास लगे तो आत्मा मिले। आत्मा की मीठास नहीं लगती तो आत्मा कहाँ-से मिले? मीठास बाहर की लगे तो बाहर का ही मिलेगा।अंतरसे लगे तो अन्दरसे आत्मा को पहचाने तो भगवान को पहचाने, भगवान को पहचाने तो आत्मा को पहचाने। अंतर की अपूर्वता लगनी चाहिये। भगवान कोई अलग ही है। मेरा आत्मा भगवान जैसा ही है। गुरु साधन कर रहे हैं। गुरुने क्या मार्ग बताया है, ऐसे बराबर पहचाने, गुरु का आशय पकड़े और अन्दर खुद को रुचि लगे तो आगे जाये।

*

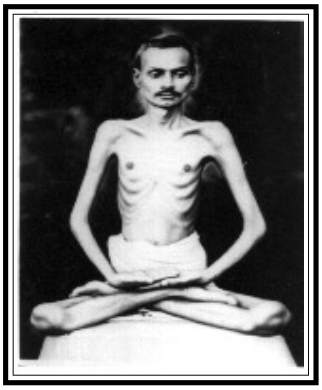

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्रो

पत्रांक – ३७८

बंबई, जेठ सुदी १०, रवि, १९४८

ईश्वरादि संबंधी जो निश्चय है, तत्संबंधी विचारका अभी त्याग करके सामान्यतः 'समयसार'का अध्ययन करना योग्य है; अर्थात् ईश्वरके आश्रयसे अभी धीरज रहती है, वह धीरज उसके विकल्पमें पड़नेसे रहनी विकट हैं।

'निश्चय'में अकर्त्ता, 'व्यवहार'में कर्त्ता, इत्यादि जो व्याख्यान 'समयसार'में है, वह विरचारणीय है; तथापि जिसके बोधसंबंधी दोष निवृत्त हुए हैं, ऐसे ज्ञानीसे वह प्रकार समझने योग्य है।

समझने योग्य तो जो है वह.....स्वरूप, जिसे निर्विकल्पता प्राप्त हुई है, ऐसे ज्ञानीसे–उनके आश्रयसे जीवके दोष गलित होकर, प्राप्त होता है, समझमें आता है।

छः मास संपूर्ण हुए जिसे परमार्थके प्रति एक भी विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ ऐसे श्री.....को नमस्कार है।

*

पत्रांक – ३७९

बंबई, जेठ वदी ३०, शुक्र, १९४८

हृदयरूप श्री सुभाग्य,

जिसकी प्राप्तिके बाद अनन्तकालकी याचकता मिटकर सर्व कालके लिये अयाचकता प्राप्त होती है, ऐसा जो कोई हो तो उसे तरनतारन जानते हैं, उसे भजें।

मोक्ष तो इस कालमें भी प्राप्त हो सकता है, अथवा प्राप्त होता है। परंतु मुक्तिका दान देनेवाले पुरुषकी प्राप्ति परम दुर्लभ है; अर्थात् मोक्ष दुर्लभ नहीं, दाता दुर्लभ है।

उपाधियोगकी अधिकता रहती है। बलवान क्लेश जैसा उपाधियोग देनेकी 'हरीच्छा' होगी, अब इस स्थितिमें वह जैसे उदयमें आये वैसे वेदन करना योग्य समझते हैं।

संसारसे कंटाले हुए तो बहुत समय हो गया है, तथापि संसारका प्रसंग अभी विरामको प्राप्त नहीं होता; यह एक प्रकारका बड़ा 'क्लेश' रहता है।

आपके सत्संगकी अत्यंत रुचि रहती है, तथापि उस प्रसंगकी प्राप्ति अभी तो 'निर्बल' होकर श्री 'हरि'को सौंपते हैं।

हमें तो कुछ करनेकी बुद्धि नहीं होती, और लिखनेकी बुद्धि नहीं होती। कुछ कुछ वाणीसे प्रवृत्ति करते हैं, उसकी भी बुद्धि नहीं होती; मात्र आत्मरूप मौनस्थिति और उस संबंधी प्रसंग, इस विषयमें बुद्धि रहती है और प्रसंग तो उससे अन्य प्रकारके रहते हैं।

ऐसी ही 'ईश्वरेच्छा' होगी! यह समझकर जैसे स्थिति प्राप्त होती है, वैसे ही योग्य समझकर रहते हैं।

'बुद्धि तो मोक्षके विषयमें भी स्पृहावाली नहीं है।' परंतु प्रसंग यह रहता है। सत्संगमें रुचि रखनेवाले डुंगरको हमारा प्रणाम प्राप्त हो।

''वननी मारी कोयल'' ऐसी एक गुर्जरादि देशकी कहावत इस प्रसंगमें योग्य है।

ॐ शांतिः शांतिःशांतिः

नमस्कार पहुँचे।

*

पत्रांक - ३८०

बंबई, जेठ, १९४८

प्रभुभक्तिमें जैसे हो वैसे तत्पर रहना यह मुझे मोक्षका धुरंधर मार्ग लगा है। चाहे तो मनसे भी स्थिरतासे बैठकर प्रभुभक्ति अवश्य करना योग्य है।

मनकी स्थिरता होनेका मुख्य उपाय अभी तो प्रभुभक्ति समझें। आगे भी वह, और वैसा ही है, तथापि स्थूलरूपसे इसे लिखकर जताना अधिक योग्य लगता है।

'उत्तराध्ययनसूत्र' के दूसरे इच्छित अध्ययन पढ़ियेगा; बत्तीसवें अध्ययनकी शुरूकी चौबीस गाथाओंका मनन करियेगा।

शम, संवेग, निर्वेद, आस्था और अनुकम्पा इत्यादि सद्गुणोंसे योग्यता प्राप्त करना और किसी समय महात्माके योगसे, तो धर्मप्राप्त हो जायेगा।

सत्संग, सत्शास्त्र और सद्व्रत ये उत्तम साधन हैं।

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जनवरी-२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
श्री कीर्तिभाई छोटालाल देसाई, अमरिका
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

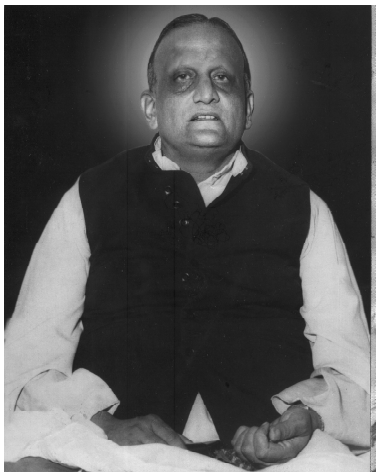

'द्रव्यद्रष्टि प्रकाश'मे से 'मार्गदर्शन' संबंधित पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजीके वचनामृत

प्रश्न :- वर्तमान ज्ञानवेदन खयाल में आता है वैसे त्रिकाली सत् खयाल में क्यों नहीं आता है ? उघाड़ में तो युक्ति आदि से आता है लेकिन अंदर से खयाल में क्यों नहीं आता ?

उत्तर :- जो उघाड़ में न्याय से खयाल में आया, तो (वो) खयालवाली ज्ञानपर्याय भी तो कोई आधार पर खड़ी है; - तो वह आधारवाली वस्तु क्या है ? - ऐसे देखकर, उस आधारवाली शक्ति में ही थँम जाना - प्रसर जाना, वो ही सत् स्वभाव है। (त्रिकाली स्वरूपमात्र खयाल में लेना है - ऐसा अभिप्राय नहीं रखकरके, अंतर में त्रिकाली आधारभूत शक्ति को स्वयं के रूप में देखने का प्रयास करना चाहिए। जिससे सहज स्थिरता होगी।) (१२५)

*

प्रश्न :- पर्याय से छूटें कैसे ?

उत्तर :- पर्याय से तो छूटे हुए ही हैं। 'त्रिकाली' तो पर्याय में आता ही नहीं। लेकिन पर्याय में एकता कर रखी है - वह एकता, त्रिकाली में थापने की है। (१२७)

*

परिणाम में बैठकर (त्रिकाली) वस्तु को देखने से वस्तु भिन्न दिखती है। इसलिए परिणाम से भिन्न होनेके लिए वस्तु में बैठकर देखना है, तभी वस्तु में अपनापन (एकत्व) होनेसे पर्याय का कार्य भिन्न दिखने लगेगा; और (- ऐसी) भिन्नता दिखने से पर्याय का नाश होते हुए भी (द्रव्य में) अपनापन तो त्रिकाल ही रहता है; तभी तो पर्याय के नाश होनेसे आकुलता नहीं होगी; और इधर में (त्रिकाली में) बैठने से सुख-शांति बढ़ेगी। (१३३)

*

असलमें बात यह है कि सबकी सब धारणा तो (अज्ञानी भी) सच्ची कर लेता है, परंतु पर्याय में बैठकर (अहंभाव रखकर) द्रव्य को देखता है, तो द्रव्य जुदा का जुदा पड़ा रहता है। पर्याय में बैठकर द्रव्य को नहीं देखना है, किन्तु द्रव्य में बैठकर द्रव्य को देखना है, तो द्रव्य में अपनापना प्रसर जाता है (- अभेदता होती है।) पर्याय में बैठने से (- एकता करने से) द्रव्य तो दूर ही पड़ा रहता है। (१३८)

*

सांसारिक ज़रूरतोंका क्या?

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

आत्माकी रुचिवालेको एक प्रश्न पूछना चाहिये कि, आपकी ज़रूरतें क्या हैं? आप कहते हैं कि, रुचिमें आत्माकी ज़रूरत लगी है तो बाहरमें जो-जो पदार्थ हैं, संयोगमें उसकी ज़रूरतोंका आपने क्या किया? हमलोग इसकी चर्चा करें। वैसे कोई भी आदमी ऐसा कहता है कि, हमें इसकी ज़रूरत है, इसकी ज़रूरत है, इतनी सारी जरूरतें, अभी इसकी ज़रूरत है, ढेर सारी ज़रूरतें सामने खड़ी हैं और वैसे तो जरूरतें तो किसीकी भी कभी पूरी नहीं होती हैं। क्या किसीको अंत आया है? वह तो अनन्त हैं। इसका अंत ही नहीं है इसलिये उसे अनन्त कहते हैं। यह बात तो अब सब लोग समझने लगे हैं कि, luxury is endless क्या कहते हैं? कि यह luxury - वैभवका कोई अंत नहीं है। ऐसा कहते हैं। अंत नहीं है मतलब सारी जरूरतें किसी की पूरी नहीं होती। अब यहाँ कोई ऐसा कहे कि, हमें तो बहुत ज्यादा वैभव नहीं चाहिये किन्तु जो भी प्राथमिक जरूरतें होती हैं, जिन जरूरतोंकी पूर्ति किये बिना चले ही नहीं ऐसा हो इसका क्या करें? बाह्य पदार्थोंकी कुछएक जरूरतोंको पूरी किये बिना न चले तो इसका क्या किया जाये? अब अगर वहाँ अपेक्षावृत्तिपूर्वक सावधानी रहती है तो आत्माकी ज़रूरतके सामने दूसरी ज़रूरतोंका क्या? यहाँ यह सवाल उठ सकता है। तो जिसको रुचिमें आत्माकी ज़रूरत लगी होती है उसको बाह्य ज़रूरतोंकी बात इतनी गौण हो जाती है कि, पूर्वकर्म अनुसार जब जो होनेवाला है सो होगा। - ऐसा समाधान हो जाता है। वह कैसे? कि पूर्वकर्म है कि नहीं? है। तो पूर्वकर्म अनुसार जो भी उदय भावमें होनेवाला होगा सो होगा परन्तु मुझसे अपनी आत्मरुचिको छोड़कर उदयकी रुचिमें किसी भी कीमत पर बह जाना नहीं है। और वास्तवमें भी पूर्वकर्म अनुसार जो होना रहता हो वही होता है, खुद इसके पीछे सावधानी रखकर प्रयत्न करे चाहे न करे बाहरमें कुछ काम नहीं आता। और सब पूर्वकर्म अनुसार होनेवाला होता है वही होता है। किन्तु हमें यह बात यथार्थरूपसे समझमें आनी चाहिये। यथार्थ समझे तो हमारे परिणाम जरूर शांत होंगे, वरना उछले बिना रहेंगे नहीं। ऐसी स्थिति है।

मुमुक्षु :- हमने मौका गवाँ दिया।

पूज्य भाईश्री :- काल तो जा ही रहा है, जो समय निकलता जा रहा है उसकी कोई कम कीमत नहीं है ऐसा है। 'श्रीमद्जी' ने तो ऐसा कहा कि, रत्नचिंतामणि से भी मनुष्यभवका एक समय अधिक मूल्यवान है। एक समय! एक समयकी आयु कोई रत्न देने पर भी बढ़ा सकता है क्या? जैसे भाई एक समय अधिक जिंदा रख दो। फिर तो एक-एक समय करके जीव कितना भी बढ़ा दे। परन्तु एक समय अधिक मिलना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति है। कहाँ कितनी कीमत देनी उस पर वास्तवमें जीवको विवेक कितना? और अविवेक कितना है इसका नाप निश्चित होता है।

(प्रवचनांश...श्री 'अध्यात्म सुधा' भाग - २, प्रवचन क्र.- ३९ पन्ना क्र. - ७९)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

3660
Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur prodesign 9374826041